महाकवि भास पर वैदिक प्रभाव (धार्मिक परिप्रेक्ष्य में)

डॉ0 मुकेश कुमार,
एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
एल.एस.एम.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़–262502 (उत्तराखण्ड)
ईमेल– drmukesh1970@gmail.com

वैदिक वाङ्मय हमारे समाज के धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवेश की अमूल्य निधि है। समस्त मानव–समाज के अभ्युथान के लिए वैदिक वाङ्मय में अनुपम उपादेय तथा सुव्यवस्थित व्यवस्था प्राप्त होती है। चारों वेद मानव–जाति के लिए प्रेरणा–स्रोत एवं जीवन–निधि के रूप में मान्य हैं। सुप्रसिद्ध पाष्चात्य वैदिक विद्वान् मैक्समूलर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ India: What Can It Teach U में अपने अनवरत वेदाध्ययन के निश्कर्श को इन षब्दों में अभिव्यक्त किया है–

''मानव–जाति का अध्ययन करने के लिए संसार का कोई भी साहित्य वैदिक साहित्य की समानता नहीं कर सकता।''

वैदिक संस्कृति की अविरल प्रवाहमान सरिता को अपनी जीवन–धारा से आप्लावित करने वाले तथा पूर्ववर्ती वैदिक संस्कृति तथा परवर्ती आर्श साहित्य के मूल्यों से जोडने वाले महाकवियों में नाटककार भास एक प्रेरक माने जाते हैं। महाकवि भास ने अपने नाटकों में स्थान–स्थान पर वैदिक संस्कृति को मानव–जीवन से संयुक्त किया है, उन्होंने वैदिक ग्रन्थों में वर्णित संस्कृति को अपनी कृतियों में यथास्थान प्रतिबिम्बित कर समाज को धार्मिकता का संदेष प्रदान किया है। यहाँ उनके रूपकों में प्रतिबिम्बित धार्मिक जीवन पर वैदिक प्रभाव को इस षोध लेख के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

धर्म

'धर्म' षब्द धारण तथा पोशण अर्थ वाली **'धृ धारणपोषणयोः'** धातु से बना है, जिसका अर्थ धारण करना, बनाये रखना अथवा पुश्ट करना है, इसका तात्पर्य यह है, कि जो तत्त्व सम्पूर्ण संसार के जीवन को धारण करता है, जिसके बिना संसार में व्यक्ति की स्थिति सम्भव नहीं होती तथा जिससे सभी कुछ संयमित और सुव्यवस्थित बना रहता है वही धर्म है।. महर्षि कणाद धर्म के विषय में लिखते हैं कि धर्म से न केवल सांसारिक अभ्युदय अपितु निःश्रेयस (मुक्ति) की सिद्धि तक होती है और उस धर्म की सम्यक् व्याख्या करने में वेद को ही परम प्रमाण माना गया है–**"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः। तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्""(वैशेषिक दर्शन–1/1/2–3)** वैदिक संस्कृति के माध्यम से ही पुराण–इतिहास, धर्म–दर्षन, ज्ञान–विज्ञान, नाट्यषास्त्र, काव्यषास्त्र, आदि की अनेक धाराएं विभिन्न स्वरूपों में प्रसारित होती है। जब तक वैदिक उपलब्धियों के द्वारा हमारे सांस्कृतिक विष्वास का कल्पतरु पल्लवित, पुश्पित एवं फलित होता रहेगा तब तक हमारे आन्तरिक और बाह्य जीवन में पूर्णता का समन्वय संयमित होता रहेगा। यदि सम्पूर्ण मानव समाज वेदों में वर्णित धर्म–कर्म एवं कर्त्तव्यों का अनुसरण करे तो उसका समग्र जीवन कल्याणकारी एवं सुखमय बन सकता है।

यज्ञ

अपौरुशेय कहे जाने वाले ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही अग्नि द्वारा देवताओं को आह्वान किया गया है।[1] वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत यज्ञों का विषेश महत्त्व है। संसार की रक्षा के निमित्त यज्ञ में प्रज्वलित अग्नि विषेश सहयोगी है क्यों कि–**''अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते, आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः''**।[2] अर्थात् अग्नि में भली–भाँति दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वर्शा होती है, वर्शा से अन्न उपजता है और उससे प्रजा की उत्पत्ति होती है, संसार के समस्त कर्मो में यज्ञ का स्थान

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है इसीलिए सब मनुश्यों के लिए यज्ञ करना आवष्यक माना गया है। **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म''**.[3] ' यज्ञ ही सर्वश्रेश्ठ देवता एवं आदि स्रश्टा प्रजापति है।[4]

यज्ञों के माध्यम से ही मानव सभी पापों एवं दुश्कर्मों से छूटकर धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष की प्राप्ति करता है। महाकवि भास ने भी अपनी कृतियों के माध्यम से समाज को यह संदेष दिया है कि यज्ञ रूप कर्त्तव्यों का पालन करना ही जीवन की सार्थकता को सिद्ध करता है, वेदों में वर्णित पंच महायज्ञों के माध्यम से ही भास ने अपने नाटकों में जिन यज्ञों को प्रदर्षित किया है उनका संक्षिप्त विवरण कुछ इस प्रकार किया जा रहा।

ब्रह्मयज्ञ

ब्रह्मयज्ञ के अर्न्तगत अध्ययन व अध्यापन को विशेश महत्त्व दिया गया है, ब्रह्मयज्ञ को जपयज्ञ तथा अन्य यज्ञों को विधि यज्ञ तथा पाक यज्ञ कहा गया है, ब्रह्मयज्ञ सर्वश्रेश्ठ यज्ञ के रूप में अभिहित है। यथा–

''ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ''।। [5]

एक स्थान पर चारुदत्त विदूशक को समझाते हुए कहते है कि अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पूजा–अर्चना करनी चाहिए, क्यों कि भक्ति से ही देवगण संतुश्ट होते हैं–

''यथाविभवेनार्च्यताम्। भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि।'' [6]

देवयज्ञ

नित्य देवताओं के निमित्त होम करना ही देवयज्ञ के अन्तर्गत आता है, क्योंकि देवयज्ञ के द्वारा ही मनुश्य देवऋण से उऋण होकर सम्पूर्ण पापों से दूर हो जाता है, यज्ञ की हवि से देवताओं के मुख रूपी अग्नि देव तृप्त होते हैं। गृहस्थी के लिए देवता, ऋशि, पितर तथा गृहदेवताओं का अन्न से पूजन करने के पष्चात् ही स्वयं अन्न ग्रहण करने का विधान है। [7]

महाकवि भास ने अपने नाटकों में यज्ञ की महत्ता को प्रदर्षित कर बालचरित नाटक में देवयज्ञ के अन्तर्गत इन्द्रयज्ञ का वर्णन भी किया है, कृश्ण के जन्म होने पर वसुदेव उन्हें कंस के कारागार से मथुरा पहुँचाने जाते है वहाँ उन्हें अपनी मृत पुत्री को लिए हुए नन्दगोप मिलते है तथा इन्द्रमहोत्सव के विशय में बताते है–

''श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति,'' [8]

पंचरात्र में वर्णित है यज्ञ से किस प्रकार देवता प्रसन्न होते हैं तथा यज्ञभूमि स्वर्ग के सदृष हो जाती है, अग्नि को यज्ञ का मुख माना गया है। भास ने बताया है कि यज्ञ की हवि से देवताओं के मुख अग्निदेव तृप्त हो गये है। यज्ञ में प्राप्त धन से पितृगण तृप्त हो गये है। गोगण (पषु–समूह) के साथ पक्षीगण भी प्रसन्न हो रहे है, सब आनन्दित है, इस प्रकार समस्त विष्व प्रसन्न दिखायी दे रहा है। महाराज के सद्गुणों से यह मृत्युलोक स्वर्ग का अतिक्रमण कर रहा है,[9]

महाकवि भास ने दुर्योधन द्वारा सम्पन्न यज्ञ की भव्यता का वर्णन करते हुए दर्षाया है कि कुरुराज का यज्ञ वैभव अत्यन्त विलक्षण है। यहाँ पर ब्राह्मणों के उच्छिश्ट अन्नों के बिखरे होने से लगता है कि मानों सभी दिषाओं में काषों के पुश्प्प खिलें हों, होम धूम से वृक्षों के पुश्पों की सुगन्ध मारी गयी है। व्याघ्र तथा हिरण एक समान अर्थात् अहिंसक हो रहे हैं और पर्वत की गुताओं में रहने वाले सिंह हिंसा से विरत हो रहे है। इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा है कि महाराज के साथ ही सम्पूर्ण संसार दीक्षित हो गया है।[10]

भूतयज्ञ

जीवों के लिए अन्न की बलि (भेंट) देना ही भूतयज्ञ है, आचार्य मनु ने रात्रिचर व दिनचर जीवों एवं कीट आदि को नित्य बलि देना ही भूतयज्ञ के अन्तर्गत आवष्यक बताया है।[11]

महाकवि भास ने नित्ययज्ञों का सम्यक् निर्वाह चारुदत्त नामक नाटक में किया है, दान–पुण्यादि के द्वारा चारुदत्त यद्यपि दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो गये किन्तु वे गृहस्थ के लिए निर्दिश्ट यज्ञों को नियम पूर्वक करते हैं, वे अपने मित्र मैत्रेय को भूतयज्ञ के निमित्त चौराहे पर मातृषक्तियों को बलि चढ़ाने की आज्ञा देते हैं–

''मैत्रेय! गच्छ चतुष्पथे बलिमुपहर मातृभ्यः''[12]

अतिथियज्ञ

अतिथि को भगवान् का रूप माना जाता है–**''अतिथिदेवो भवः'',**[13] अतः अतिथि का सत्कार एक यज्ञ के समान है जिसे अतिथि यज्ञ कहते हैं। अथर्ववेद में एक स्थान पर अतिथि सत्कार का वर्णन इस प्रकार दिया गया है –

''इष्टं च वा एष पूर्त्तं च, गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति॥
अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य, सात्मत्वायं यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्॥''[14]

पाद–प्रक्षालन द्वारा अतिथि सत्कार का वर्णन भास ने प्रतिमानाटक में इस प्रकार वर्णित किया है। रावण संन्यासी का वेष धारण कर राम के समीप जाते हैं राम उनका आतिथ्य सत्कार करते हुए सीता को उनके पैर धोने की आज्ञा देते हैं, लेकिन रहस्य खुलने के भय से रावण के रोकने पर राम स्वयं उनके पैर धोना चाहते हैं परन्तु रावण मना करते हुए कहते हैंकि –
''वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः।'' [15]

पितृयज्ञ

वैदिक ग्रन्थों में पितृयज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान है, सृश्टिक्रम में पुत्र की उत्पत्ति तर्पण के लिए आवष्यक मानी गयी है, बिना पुत्र के स्वर्ग प्राप्त न होने की मान्यता का संकेत भी मिलता है। [16]

नाटककार भास ने वन में राम को पितृयज्ञ के लिए उचित सामग्री न होने के कारण चिन्तातुर प्रदर्षित किया गया है। सीता द्वारा चिन्ता का कारण पूछने पर वे कहते हैं कि–' कल पिताजी के वार्शिक श्राद्ध का दिन है, इस दिन पितृयज्ञ उत्तम विधि से किये गये पिण्डदान की इच्छा रखते हैं, इसे किस विधि से पूर्ण करूँ यही सोच रहा हूँ अथवा पितृगण तो जिस किसी भी प्रकार से सन्तुश्ट हो सकते हैं क्योंकि उन्हें हमारी अवस्था का ज्ञान है, फिर भी मैं पिताजी तथा अपने अनुरूप उनका श्राद्ध करना चाहता हूँ। [17]

पितृयज्ञ के लिए पुत्रों का होना आवष्यक है यही प्रदर्षित करते हुए भास उरुभंग में दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को क्षमा करने की बात कहलवाते हैं। क्योंकि भीम द्वारा दुर्योधन पर गदा–प्रहार देखकर बलराम अत्यन्त क्रोधित होकर भीम द्वारा युद्ध के नियमों का अतिक्रमण करने पर बदला लेने की बात कहते हैं। इस पर दुर्योधन बलराम को समझाते हुए कहते हैं कि कुरुवंष के पितरों को जलांजलि देने वाले पाण्डव जीवित रहने चाहिए। [18]

इस प्रकार वेदकालीन समाज की भाँति ही भास कालीन समाज में भी नित्य–देवताओं की पूजा–अर्चना करना, गृह देवता की पूजा करना, मातृदेवियों तथा भूतों (पशु–पक्षियों), प्राणियों को बलि अर्पित करना एक गृहस्थ के लिए आवष्यक नित्य–धर्म था, यज्ञों के साथ ही महाकवि भास ने दान, व्रत आदि धार्मिक कृत्यों को भी अपनी कृतियों में प्रतिश्ठापित किया है जिनका वर्णन संक्षिप्त रूप से यहाँ किया जा रहा है।

दान

वेदों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित आख्यानों के अनुसार अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले अनेक दानवीर हुए हैं। इस लोक में दिया गया दान परलोक में फलदायी होता है। मनुस्मृति में कहा भी गया है–

''ना पुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्र दारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥'' [19]

अर्थात्– परलोक में कोई सहायता नहीं करता, माँ, बाप, स्त्री, पुत्र या हितैशी परिजन कोई भी नहीं, केवल धर्म ही सहायक होता है। इसलिए यत्न पूर्वक धर्म का संचय करना चाहिए।

महाकवि भास ने स्वप्नवासदत्ता में श्रद्धा से दिये गये दान का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

''अभिप्रेतदानेन तपास्विजन उपनिमन्त्र्यताम्।'' [20]

पंचरात्र नाटक में भी दान के लिए दिये हुए वचन से न लौटने का वर्णन करते हुए कहा है कि–दुर्योधन गुरु द्रोण को गुरु–दक्षिणा स्वरूप पाण्डवों को पाँच रातों में मिल जाने पर उनका राज्य वापस देने का वचन देते हैं तथा षकुनि के कहने पर वे कहते हैं कि एक बार दानजल देने पर वापस नहीं लिया जाता है। [21]

ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र द्वारा कर्ण से कवच–कुण्डल माँगने पर जब षल्य कर्ण को कवच–कुण्डल न देने की बात कहते हैं तब कर्ण यज्ञ तथा दान की महिमा के विशय में बड़े ही सुन्दर षब्दों में कहते हैं कि–समय बीतने पर उपार्जित विद्या नश्ट हो जाती है, मजबूत जड़ वाले वृक्ष भी उखड़ कर गिर जाते हैं। जल भी जलाषय में जाकर गर्मी आने पर सूख जाता है किन्तु हवन आदि अर्पित हुआ पदार्थ या दान में दी हुई वस्तु है वह ज्यों की त्यों बनी रहती है अर्थात् उसका क्षय नहीं होता। [22]

चारुदत्त नाटक में दान के कारण दरिद्र अवस्था में पहुँचे हुए चारुदत्त के माध्यम से भास ने कहलवाया है कि– मेरी सम्पत्ति प्रेमी जनों के कार्यों को पूर्ण करने में विनश्ट हुई है। मैनें आज तक किसी का धन से अपमान नहीं किया, 'दान उत्तम वस्तु है' इसी विष्वास से धन का दान करने वाला मेरा अन्तःकरण क्षीणता को प्राप्त नहीं होता। [23] इस प्रकार धार्मिक कर्मकाण्डों के अन्तर्गत दान का विषेश महत्त्व दर्शाया गया है।

व्रत

व्रतों के द्वारा मनुश्य पुण्यों को अर्जित तथा पापों का नश्ट करता है। प्रत्येक धार्मिक कार्यों, यज्ञों व उत्सवों के अवसर पर व्रत रखने का विषेश महत्त्व हैं मनुस्मृति में वर्णित है–

''यतात्मनोऽप्रमतस्य द्वादशाहमभोजकम्।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापनोदनः।।'' [24]

अर्थात्– यत चित्त होकर मन और इन्द्रियों को रोककर बारह दिन उपवास करने को पराक–व्रत कहते हैं जो कि सभी पापों का नाष करने वाला होता है।

चारुदत्त नाटक में चारुदत्त की पत्नी विदूशक से स्वस्ति पाठ कराने हेतु, रत्नावली दान में देने का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं–

''ननु षष्ठीमुपवसामि सर्वसारविभवेन ब्राह्मणेन''
स्वस्ति वाचयितव्यमित्येषोज्ञस्यागमः।'' [25]

धार्मिक कर्मकाण्डों में अनन्य आस्था को प्रतिज्ञायौगन्धरायण में श्रेश्ठ व सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजा वत्सराज प्रद्योत की कैद में हैं परन्तु वे विपरीत परिस्थिति होते हुए भी अपने धार्मिक कार्यों को नहीं छोड़ते, विदूशक उनके चतुर्दषी व्रत का वर्णन करते हुए मंत्रियों से कहता है कि–

''अद्य चतुर्दशी स्नायमानः प्रतिपालितश्च,'' [26]

व्रत का यही स्वरूप चारुदत्त नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार व नटी के माध्यम से मिलता है–

''सूत्रधार किन्नामधेय आर्याया उपवासः,
नटी अभिरूपपतिर्नाम।।'' [27]

प्रायश्चित्त

अपनी संस्कृति के अनुसार मनुश्य जन्म से मृत्यु पर्यन्त अनेक नियमों व कर्त्तव्यों से बंधा रहता है। इन्हीं कर्त्तव्यों के पालन में वह जब–जब त्रुटि करता है तब–तब वह पाप का भागी होता है। अपने द्वारा की गयी त्रटियों का निराकरण ही प्रायष्चित है। अतः प्रायष्चित की अवस्था को प्राप्त कर भी जो मनुश्य प्रायष्चित नहीं करता वह सज्जनों की संगति के योग्य नहीं होता। [28]

उरुभंग में गान्धारी के पष्चात्ताप का वर्णन बलदेव द्वारा मिलता है। गदा–युद्ध में घायल पड़े दुर्योधन की मृत्यु व पराजय पर पष्चात्ताप में आँसू बहाती हुई गान्धारी को देखकर बलदेव कहते हैं– पुत्र एवं पौत्रों

के मुख को देखने के लिए जिनकी आँखे कभी लालायित नहीं हुई वहीं गान्धारी आज दुर्योधन के अस्त होने वाले षोक से अपने धैर्य को खो चुकी है। [29]

प्रतिमा नाटक में भरत जब वन में श्रीराम से मिलने जाते है तथा स्वयं को इक्ष्वाकुवंष पर कलंक मानते है, वे स्वयं को दण्डित करने हेतु व प्रायष्चित के लिए कृतघ्न, अधमादि षब्दों से सम्बोधित करते हैं–

''निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।।'' [30]

इस प्रकार वैदिक संस्कृति के अनुरूप चलकर ही मनुश्य जीवन के सार्थक मूल्यों को प्राप्त करता है, अतः यज्ञ, तप, दान आदि अनेक धार्मिक कर्मकाण्डों की महत्ता मानव–जीवन के लिए अति आवष्यक है, क्योंकि धर्म ही एक ऐसा साधन है जो मनुश्य को लोक व परलोक दोनों में परम सुख की प्राप्ति कराता है, अतः प्रत्येक मानव के लिए वेदों का अध्ययन आवष्यक है क्योंकि वेद ही भारतीय संस्कृति के सच्चे मार्गदर्षक है तथा मानव के कर्त्तव्यों को निर्धारित करते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णन से स्पश्ट होता है कि महाकवि भास ने वेदों का अनुसरण कर अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में यज्ञ, दान, आदि धार्मिक कृत्यों को प्रसारित कर समाज को एक आदर्षात्मक स्वरूप प्रदान किया। भासकालीन संस्कृति का स्वरूप एक ऐसे संगम की भाँति है, जिसमें पुरातन और आधुनिकता का एक साथ समन्वय दृश्टिगोचर होता है। कवि ने वैदिक आदर्षों पर चलकर अपने समाज का निर्माण किया और समय–समय पर जितने भी आचार–विचार उसके सम्पर्क में आये उन सबको समेटकर अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। महाकवि भास ने वैदिक संस्कृति से अत्यन्त प्रभावित होकर अपनी कुषाग्र प्रतिभा के माध्यम से महती नाटकीय सम्भावनाओं के मार्ग को उद्घाटित किया है। इस प्रकार ये भावी पीढ़ी हेतु वैदिक संस्कृति की धार्मिक उर्वरा भूमि तैयार करने वाले दिषा निर्देषक के रूप में वाल्मीकिवत् सदैव स्मरणीय रहेंगे।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद–1/1, अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।
2. मनुस्मृति–3/76, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन्–1982
3. षतपथ ब्राह्मण–3/9/4/23 अच्युत ग्रन्थमाला, बनारस, संवत्–1994–1997
4.(क) षतपथ ब्राह्मण–4/3, एश वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत् प्रजापतिः।.
(ख) षतपथ ब्राह्मण–1/7/4/4, सः वै यज्ञ एव प्रजापतिः।
5.मनुस्मृति–2/86, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन्–1982
6. चारुदत्त–1/पृश्ठ संख्या–30, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्– 2068
7.मनुस्मृति–3/117, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन्–1982
8.बालचरित–1/पृश्ठ संख्या–19 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्– 2068
9.पंचरात्र–1/4, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्– 2068
10.पंचरात्र–1/3 द्विजोच्छिश्टैरन्नैः प्रकुसुमितकाषा इव दिषो,

हविर्धूमैः सर्वे हृतकुसुमगन्धास्तरुगणाः।
मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृत सिंहाष्च गिरयो,
नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव।।

11. मनुस्मृति–3/90, विष्वेभ्यष्चैव देवेभ्यो बलिमाकाष उत्क्षिपेत्।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च।।
12. चारुदत्त–1/पृश्ठ संख्या–30, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068

13. तैत्तिरीय उपनिशद्–1/11/2,(उपनिशत्संग्रहः) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन्–1980
14. अथर्ववेद–9/6 पर्याय–3/1, 8, दयानन्द संस्थान नई दिल्ली, संवत्–2031
15. प्रतिमानाटक–5/पृश्ठ संख्या–164, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068
16. मनुस्मृति–9/138, पुंनाम्नो नरकादस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।।
17. प्रतिमानाटक–5/5 गच्छन्ति तुश्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दषा मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्त्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम्।।
18. उरुभंग–1/31 जीवन्तु ते कुरुकुलस्यानिवापमेघा।
वैरं च विग्रटकथाष्च वयं च नश्टाः।।
19. मनूस्मृति–4/239, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
20. स्वप्नवासवदत्तम्–1/पृश्ठ संख्या–20,चौखम्भा संस्कृत संस्थान,वाराणसी, वि.संवत्–2068
21. पंचरात्र–1/47, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068
22. कर्णभार–1/22, षिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्, सुबद्धमूलाः निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च षुश्यति, हुतं च दत्तं च तथैव तिश्ठति।।
23. चारुदत्त–1/4 क्षीणा ममार्थाः प्रणयिक्रियासु, विमानितं नैव परं स्मरामि।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं सत्त्वं सखे ! न क्षयमभ्युपैति।।
24. मनुस्मृति–11/215, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
25. चारुदत्त–3/पृश्ठ संख्या–93, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068
26. प्रतिज्ञायौगन्धरायण–3/पृश्ठ संख्या–90, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068
27. चारुदत्त–1/पृश्ठ संख्या–5, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068
28. मनुस्मृति–11/47, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
29. उरुभंग–1/40 या पुत्र पौत्रवदनेश्वकुतूहलाक्षी, दुर्योधनास्तमितषोकनिपीतधैर्या।
अस्रैरजस्रमधुना पतिधर्मचिह्नमार्द्रीकृतं नयनबन्धमिदं दधाति।।
30. प्रतिमानाटक–4/5 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.संवत्–2068,

Copyright © 2015, Dr. Mukesh Kumar. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.